(33)

ऋतावरी

प्राच्यभारती संस्थान, गोरखपुर

शोधपत्रिका

अङ्क 5 * अप्रैल, 2004

RTĀVARĪ

Research Journal of the

Prachya Bharati Samsthana

GORAKHPUR

No. 5 * April, 2004

ऋग्वेद के कतिपय आयुर्विज्ञानविषयक सन्दर्भ

-डॉ० मुरलीमनोहर पाठक,
उपाचार्य, स्नातकोत्तर संस्कृत अध्ययन केन्द्र,
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन।

वैदिक संहिताएँ भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता तथा ज्ञान की अजस्र स्रोत होने के साथ ही विश्वसाहित्य की अनुपम निधि भी हैं। इनमें केवल ज्ञान का ही सन्निवेश नहीं है, अपितु विज्ञान का भी अक्षय कोश भरा पड़ा है। इन संहिताओं में भी ऋग्वेद सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इसमें जीवन के प्रत्येक पक्ष को बीजरूप में देखा जा सकता है। अन्य विज्ञानों के समान चिकित्साविज्ञान अथवा आयुर्विज्ञान के भी मूल सूत्र हमें ऋग्वेद में उपलब्ध होते हैं। इसमें अनेकत्र नीरोग बने रहने की कामना की गयी है। ऋषि गोतम देवताओं से प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि हे देवों! हम अपने कानों से कल्याणकारी बातें सुनें । हे पूज्य देवों! हम अपनी आँखों से कल्याणकारी दृश्यों को ही देखें। हम दृढ अङ्गों से युक्त होकर देवों की स्तुति करते हुए उनके द्वारा निर्धारित आयु अर्थात् सौ वर्षों की आयु प्राप्त करें।[1] ऋषि गृत्समद रुद्र की स्तुति निम्नानुसार करते हैं-

त्वादत्तेभी रुद्र शन्तमेभिः शतं हिमा अशीम भेषजेभिः।[2]

अर्थात् हे रुद्र! तुम्हारे द्वारा प्रदान की गयी कल्याणकारी ओषधियों से हम सौ शरद् ऋतु अर्थात् सौ वर्ष की आयु प्राप्त करें। यही नहीं, ऋषि ने रुद्र को श्रेष्ठ वैद्य के रूप में भी प्रतिष्ठित किया है- **भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमि ।[3]** (हे रुद्र! भिषजों अर्थात् चिकित्सावैज्ञानिकों में तुम्हें सर्वोत्कृष्ट चिकित्सक के रूप में सुनता -जानता हूँ।) ऋषि मरुतों से विभिन्न प्रकार की पुरातन ओषधियों की याचना करते हुए कहता है-

या वो भेषजा मरुतः शुचीनि
या शन्तमा वृषणो या मयोभु।
यानि मनुरवृणीता पिता न-
स्ता शं च योश्च रुद्रस्य वश्मि।[4]

---

1. भद्रं कर्णेभिःशृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः।-ऋग्वेद, 10.89.8
2. ऋग्वेद, 22.33.2 3. तदेव 2.33.4 4.तदेव 2.33.13

अर्थात् हे मरुद्गण! तुम्हारी ओषधियाँ, जो पवित्र हैं, जो अतिशय सुख देने वाली हैं, हे शक्तिशाली! जो हितकारी हैं, जिनको हमारे पूर्वज मनु ने चुना था, उन ओषधियों की तथा रुद्र की ओषधियों की जो आनन्द तथा कल्याण प्रदान करने वाली हैं, मैं इच्छा करता हूँ।

ऋग्वैदिक ऋषि प्राकृतिक उपादानों में चिकित्सकीय तत्त्वों के दर्शन करता है। वह जल में विद्यमान औषधीय गुणों के कारण देवताओं से भी जलों की स्तुति करने को कहता है-

अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तये।
देवा भवत वाजिनः।[5]

अर्थात् जल के अन्दर अमृत भरा हुआ है, जल में ओषधियाँ निहित हैं, अतः हे देवों! आप जलों की स्तुति करने में शीघ्रता करें।

अगले मन्त्र में वह कहता है-

अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भिषजा।
अग्निं च विश्वशम्भुवमापश्च विश्वभेषजीः।।[6]

अर्थात् सोम देवता ने मुझसे बताया है कि जल में सभी ओषधियाँ और जगत् के लिए अत्यन्त कल्याणकारी अग्नि भी निहित है। इसमें सभी औषधीय वनस्पतियाँ भी हैं। ऋग्वेद में पवित्र एवं औषधीय जल द्वारा दीर्घायुष्य की कामना की गयी है। जलों से कहा गया है-

आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे मम।
ज्योक् च सूर्यं दृशे।।[7]

अर्थात् हे आपः! आप सभी रोगनिवारक ओषधियों को मेरे शरीर के नैरुज्य के लिए लाएँ, जिससे मैं दीर्घकाल तक सूर्य के दर्शन कर सकूँ। इसके आगे के मन्त्र में ऋषि ने जल से समस्त प्रकार के रोगों को दूर करने की प्रार्थना की है। वे कहते हैं-

इदमापः प्र वहत यत्किं च दुरितं मयि।[8]

अर्थात् हे आपः! आप मेरे अन्दर विद्यमान किसी भी प्रकार के पाप अथवा कष्ट को दूर कर दें। इस मन्त्र में हम प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत किये जाने वाले 'जलकल्प' के बीज देख सकते हैं, जिसमें किसी भी रोग के निवारणार्थ कुछ दिनों तक केवल जल पिलाया जाता है। ऋग्वेद में जलको सभी रोगों का निवारण करने

---

5. तदेव,1.23.19 6. तत्रैव, मन्त्र 20
7. तत्रैव मन्त्र 21 8. तत्रैव, मन्त्र 22

वाला बताया गया है-

आप इद्वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः।

आपः सर्वस्य भेषजीस्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम्॥[9]

तात्पर्य यह है कि जल तत्वतः ओषधियुक्त होता है। जल सभी प्रकार के रोगों को दूर करने वाला होता है। यह सभी के लिए औषधीय है, तुम्हारे लिए भी औषधीय हो जाये। इस प्रकार ऋषियों ने जल को रोग दूर कर दीर्घायुष्य प्रदान करने वाले तत्व के रूप में प्रतिष्ठित किया है।

ऋग्वेद में जल के अतिरिक्त वात या वायु को भी औषधीय तत्वों के धारक के रूप में निरूपित किया गया है। औषधीय वायु से हृदय की शुद्धि हेतु प्रार्थना करते हुए ऋग्वैदिक ऋषि कहता है-

वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे।

प्र ण आयूंषि तारिषत्॥[10]

अर्थात् वायु हमारे हृदय में आनन्द प्रदान करते हुए औषधीय तत्वों सहित बहे। वह हमारी आयु को बढ़ा दे। वायु से अमृत प्रदान करने की भी प्रार्थना की गयी है-

यददो वात ते गृहेऽमृतस्य निधिर्हितः।

ततो नो देहि जीवसे॥[11]

अर्थात् हे वायु! तुम्हारे घर में जो अमृत का कोश रखा हुआ है, तुम उसमें से हमें दीर्घ जीवन हेतु कुछ प्रदान करो। पुनश्च वायु की प्रार्थना करते हुए कहा गया है-

आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः।

त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे॥[12]

अर्थात् हे वायु! तुम ओषधियुक्त होकर बहो। हमारे अन्दर जितने भी दोष हैं, उन्हें बहा ले जाओ, क्यों कि तुम विश्वौषधि के रूप में हो तथा देवताओं के दूत बनकर विचरण करते हो।

ऋग्वेदीय ऋषियों ने विभिन्न वनस्पतियों को भी नैरुज्यकारक प्रतिपादित किया है। एक मन्त्र में ऋषि ने वनस्पतियों के चार भेद किये हैं-

अश्वावतीं सोमावतीमूर्जयन्तीमुदोजसम्।

आवित्सि सर्वा ओषधीरस्मा अरिष्टतातये॥[13]

9. ऋग्वेद 10.137.6
10. तदेव 10.186.1
11. तदैव, मन्त्र 3
12. ऋग्वेद 10.137.3
13. तदेव, 10.97.7

अर्थात् मैं इस रोग से मुक्ति प्रदान करने वाली अश्वावती, सोमवती, ऊर्जयन्ती तथा उदोजस् इन चारो ओषधियों को जानता हूँ। इन ओषधियों में से प्रथम दो रोगनिवारक हैं तथा अन्तिम दो टॉनिक या रसायनस्वरूपा प्रतीत होती हैं। ऋषि ने ओषधियों को माता के रूप में भी प्रतिष्ठित किया है तथा उनकी रक्षा के लिए आत्मोत्सर्ग तक करने की भी बात कही है।

ओषधीरितिमातरस्तद्वो देवीरुपब्रुवे।

सनेयमश्वं गां वास आत्मानं तव पूरुष ॥[14]

अर्थात् हे मातृस्वरूपा ओषधियों! हे देवियों! मैं तुमसे सम्बद्ध वैद्य से बात कर रहा हूँ। हे चिकित्सक! मैं ओषधि के लिए तुम्हें अश्व, गाय, वस्त्र और यहाँ तक कि अपने को भी समर्पित करता हूँ। एक अन्य मन्त्र में विभिन्न प्रकार की ओषधियों से युक्त देश में रहने वाले तथा उन ओषधियों को जानने वाले प्राज्ञ को ही भिषक् कहा गया है। ऐसा भिषक् ही राक्षसों का हन्ता एवं रोगों का नाशक होता है।[15]

लोक में 'यक्ष्मा' शब्द का व्यवहार 'क्षयरोग' के लिए किया जाता है, किन्तु ऋग्वेद में इसका प्रयोग रोगमात्र के लिए दृष्टिगत होता है। दशम मण्डल में पाँच मन्त्रों का एक सूक्त (10.161) उपलब्ध होता है, जिसमें यक्ष्मा (रोग) से मुक्ति के उपाय बताये गये हैं। इस सूक्त के ऋषि का नाम भी 'यक्ष्मनाशन' है। प्रथम मन्त्र में ही ऋषि ने हविष्यविशेष के प्रयोग द्वारा रोगमुक्ति की बात कही है-

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय क-

मज्ञातयक्ष्मादुतराजयक्ष्मात्।

ग्राहिर्जग्राह यदि वैतदेनं

तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम्॥[16]

अर्थात् हे यक्ष्माभिभूत! मैं तुम्हें इस हविष्य द्वारा किसी भी प्रकार के अज्ञात रोग से तथा 'राजयक्ष्म' नामक रोगों के राजा से भी मुक्ति दिलाता हूँ। यदि इस व्याधित पुरुष को किसी ग्रहणशील ग्रहरूप देव ने भी पकड़ रखा है, तो हे इन्द्र एवं अग्नि । आप लोग इस रोगी को उस देवता के चंगुल से मुक्त करायें।

उक्त रोगविनाशक हविष्य का प्रभाव इतना अधिक है कि उससे क्षीण आयु वाले तथा यमराज के पास चले गये रोगी को भी जीवित किया जा सकता है। यदि उस रोगी को आयु की क्षयकारिणी निर्ऋति नामक देवता ने भी पकड़ लिया है तो

14. ऋग्वेद,10.97.4
15. तदैव, मन्त्र 6
16. ऋग्वेद, 10.161.1

उसके पास से भी उसे सौ वर्षों के आयुपर्यन्त जीवित रहने के लिए नीरोग किया जा सकता है।" ऋषि ने अगले मन्त्र में उस हविष्यविशेष के तीन विशेषण - 'सहस्राक्ष','शतशारद' तथा 'शतायुष्' प्रयुक्त किये हैं।" सायण ने सहस्राक्ष का अर्थ 'फल के रूप में हजार आँखों वाला', 'शतशारद' का अर्थ -'सौ वर्षों वाला' तथा 'शतायुष्' का अर्थ 'जिसको फल के रूप में सौ वर्षों की आयु प्राप्त हो' ऐसा किया है। उन्होंने इस सूक्त का पाठ करते हुए हृदयरोगसहित अन्य रोगों के उपशमन हेतु हवि प्रदान करने का सङ्केत किया है।

ऋग्वेद के ही एक अन्य सूक्त (10. 163) में छः मन्त्रों के माध्यम से विवृहा नामक ऋषि ने मनुष्य के विभिन्न अङ्गों से रोगनिवारण करने की बात कही है।" उन्होंने रोगी की आँखों, नाक, कानों, छुबुक (ठोड़ी), शिर, मस्तिष्क, जिह्वा, ग्रीवा, उष्णिहा (ऊपर की ओर जाने वाली स्निग्ध स्नायुओं , कीकस (अस्थियों), अनूक्य (अस्थिसन्धियों), अंस (कन्धों), बाहुओं, आँतों, गुदाओं (जिनसे समान वायु द्वारा अन्नरस धातुओं तक ले जाया जाता है, उन नाड़ियों), वनिष्ठ (बड़ी आँत), हृदय, मतस्नों (वृक्कों), यक्न (यकृत), प्लाशि (प्लीहा इत्यादि), ऊरू (जाँघों), अष्ठीवद् (घुटनों),पार्ष्णि (पैर का अपरभाग), प्रपद (पादाग्र), श्रोणि, भासद (कटि-सम्बन्धी), भंसस् (पायु), मेहर (मेढ्र), लोमों, नखों इत्यादि में रहने वाले रोगों को दूर करने का उद्घोष किया है। अन्तिम मन्त्र में तो प्रत्येक अङ्ग, प्रत्येक लोम तथा प्रत्येक सन्धि से रोगनिवारण करने की बात कही गयी है।

ब्रह्मपुत्र रक्षोहा ऋषि द्वारा दृष्ट एक अन्य सूक्त (10.162) के छः मन्त्रों में गर्भरक्षण-सम्बन्धी बातें प्रस्तुत की गयी हैं। गर्भरक्षण को ही इस सूक्त की देवता के रूप में भी प्रतिष्ठित किया गया है। यहाँ अग्नि को रक्षोहा (मन्त्र 1) अर्थात् राक्षसों को नष्ट करने वाला कहा गया है। गर्भकाल में अर्श इत्यादि रोग गर्भवती को पीडित करते हैं। सूक्त के दूसरे मन्त्र में ऋषि उनका निवारण बताते हुए कहते हैं-

यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये।
अग्निष्टं ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत्॥[20]

अर्थात् हे गर्भिणि! जो भी रोग 'दुर्णामा' अर्थात् अर्श आदि के रूप में तुम्हारे गर्भ में

17. तत्रैव, मन्त्र 2
18. तत्रैव, मन्त्र 3 तथा उस पर सायणभाष्य।
19. द्र0ऋग्वेद 10.163.1-6 पर सायणभाष्य।
20. ऋग्वेद, 10.162.2

स्थित है, उस मांस को नष्ट करने वाले रोग को अग्नि देवता मन्त्र की सहायता से पूरी तरह नष्ट कर दें। ऋषि आगे कहते हैं कि हे गर्भिणि! जो रोग तुम्हारी योनि में रेतस् के रूप में जाते हुए पुनश्च वहाँ स्थित हुए सर्पणशील तथा दसवें मास में उत्पन्न होने वाले गर्भ को नष्ट करना चाहता है, उसे मैं मन्त्र द्वारा नष्ट करता हूँ।" इसी सूक्त के अगले मन्त्र में एक ऐसे रोग की चर्चा की गयी है जो योनि में स्थित गर्भ को चाट जाता है। हम इसे वर्तमान समय में बहुधा होने वाले 'मिस्ड एबार्शन' (Missed Abortion)नामक गर्भदोष के रूप में देख सकते हैं। मन्त्र इस प्रकार है-

यस्त ऊरू विहरत्यन्तरा दम्पती शये।
योनिं यो अन्तरारेह्हि तमितो नाशयामसि॥ [22]

तात्पर्य यह है कि जो रोग शयन काल में स्त्री की जाँघों के बीच में गर्भ नष्ट करने के लिए स्थित रहता है, जो दम्पती के मध्य में गर्भनाशार्थ शयन करता है, तथा जो योनि में प्रविष्ट गर्भ को अपनी जिह्वा से चाट कर नष्ट कर देता है, उस रोग को मैं अग्नि एवं मन्त्र की सहायता से नष्ट करता हूँ।

दीर्घायुष्य के लिए केवल शारीरिक रूप से ही नीरोग होना अपेक्षित नहीं है, अपि तु इसके लिए मानसिक रूप से भी नीरोग होना परमावश्यक है। ऋग्वेद में मन को स्वस्थ रखने के भी उपाय बताये गये हैं। दुःस्वप्न से मन उद्विग्न हो जाता है, अतः इसके निवारणार्थ एक पूरा सूक्त (10.164) उपलब्ध होता है, जिसके ऋषि प्रचेता हैं। उन्होंने पाँच मन्त्रों में दुःस्वप्न नष्ट करने की बात कही है। इस सूक्त की देवता के रूप में भी 'दुःस्वप्ननाशन' को ही प्रतिष्ठित किया गया है। इसमें दुःस्वप्न के अधिष्ठाता देव को दूर जाने के लिए कहा गया है। साथ ही उनसे यह प्रार्थना भी की गयी है कि वे निर्ऋति नामक पाप की अधिष्ठात्री देवी से हमारे पास न आने के लिए कहें। जीवित व्यक्ति का मन बहुप्रकारक होता है, अर्थात् वह भोक्तव्य विविध विषयों के प्रति उत्सुक रहता है। दुःस्वप्न द्वारा उसकी स्वतन्त्रता में व्याघात होता है। इसीलिए मन की उद्विग्नता अथ च रुग्णता को नष्ट करने के लए दुःस्वप्न का परिहार किया गया है।[23]

इस प्रकार हम देखते हैं कि ऋग्वेद में आयुर्विज्ञानविषयक सन्दर्भ यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। आवश्यकता इस बात की है कि उन सन्दर्भों को वर्तमान

21. ऋग्वेद,10.162.3
22. तदेव 10.162.4
23. द्रष्टव्य 10.163.1-5

चिकित्सकीय परिवेश की दृष्टि से देखकर उनका विश्लेषण किया जाय तथा यथासम्भव उन पद्धतियों का उपयोग कर नीरोग रहते हुए दीर्घायुष्य की प्राप्ति की जाय। ऋग्वेद केवल ओषधि-सेवन द्वारा ही नीरोग रहने की बात नहीं करता, अपितु उसमें रोगों की चिकित्सा कहीं विभिन्न ओषधियों के प्रयोग द्वारा बतायी गयी है, तो कहीं सूर्य, इन्द्र, अग्नि इत्यादि प्राकृतिक उपादानों की आराधना से और कहीं संयम इत्यादि का आचरण करने से। इन विधियों से त्रिदोष (वात, पित्त और कफ) को कुपित न करते हुए नैरुज्य और दीर्घायुष्य की प्राप्ति की जा सकती है, जो आयुर्विज्ञान का लक्ष्य है।